International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

भारतीय संघवाद की मुख्य उभरती हुई प्रवृत्तियों का विश्लेषण

अशोक कुमार
एम०फिल०, राजनीति विज्ञान विभाग,म०द० विश्वविद्यालय,रोहतक
Email : ashokbhoria1@gmail.com

शोध–आलेख सार : भारतीय संविधान के अनुसार भारत में संघीय शासन–प्रणाली लागू की गई है, किन्तु संविधान में 'संघ' शब्द का आल्लेख कहीं नहीं किया गया है। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में भारत को 'राज्यों का संघ' कहा गया है। 'संघ' शब्द के स्थान पर 'राज्यों के संघ' शब्दों के प्रयोग का कारण बताते हुए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था, ''मसौदा समिति के द्वारा इस शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करने के लिए किया गया है कि यद्यपि भारत एक संघात्मक राज्य है, किन्तु यह संघात्मक राज्य किसी भी प्रकार से राज्यों के पारस्परिक समझौते का परिणाम न होने के कारण किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नही है।'' स्पष्ट है कि देश और जनता को शासन की सुविधा के लिए विभिन्न राज्यों में बाँटा गया है, किन्तु देश अखण्ड तथा एक पूर्ण इकाई है।

मुख्य–शब्द : संघीय शासन–प्रणाली, एकात्मक व्यवस्था, भारतीय संविधान ।

शोध–प्रविधिः इस शोध–पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ–साथ शोधकर्त्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

भूमिका : भारत संघात्मक राज्य होने के पश्चात भी एक जैसा नहीं रहा है क्योंकि भारतीय राजनीति में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं, जिन्होने संघवाद के स्वरूप को प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति में हुए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद में अनेक रूझान उभरकर सामने आयी हैं।

राजनीतिक समरूपता का पतन– भारत में 1967 तक केन्द्र व राज्यों के बीच राजनीतिक समरूपता कायम रही, क्योंकि 1967 तक केन्द्र तथा एक दो राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में कॉंग्रेस की सरकारें सत्तारूढ रहीं। केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकारें होने के कारण केन्द्र–राज्य संबंधों में मधुरता थी, लेकिन इससे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढावा मिला। 1967 में चौथे आम चुनाव हुए। यद्यपि इन चुनावों में केन्द्र में कॉंग्रेस की सरकार बनी, लेकिन कई राज्यों में गैर कॉंग्रेसी सरकारें सत्तारूढ हुई। चौथे आम चुनावों के पश्चात केंद्र में कॉंग्रेस सरकार और राज्यों में गैर–कॉंग्रेसी सरकार बनने से केंद्र–राज्य संबंधों का नया युग शुरू हुआ, क्योंकि अब कॉंग्रेस पार्टी का एकाधिकार समाप्त हो गया था।

1971 में हुए लोकसभा चुनावों में कॉंग्रेस को भारी सफलता प्राप्त हुई। 1972 में जिन राज्यों में चुनाव हुए, उनमें भी कॉंग्रेस पार्टी को सफलता प्राप्त हुई और उनमें कांग्रेस पार्टी की सरकारें बनी। इस प्रकार कांग्रेस पार्टी की वही स्थिति कायम हो गयी, जो 1967 से पहले मौजूद थी। निःसंदेह सभी राज्यों में कांग्रेस पार्टी की सरकार कार्यरत नहीं थी, लेकिन अधिकांश राज्यों में कांग्रेस पार्टी की सरकारें बनने से काफी हद तक राजनीतिक समरूपता स्थापित हो गई थी। मार्च, 1977 में पहली बार केन्द्र में गैर–कांग्रेसी सरकार अर्थात् जनता पार्टी की सरकार का गठन हुआ। 1977 से 1980 के बीच केंद्र तथा अनेक राज्यों में जनता पार्टी की सरकारें रहीं, लेकिन शीघ्र ही केंद्र में जनता पार्टी की सरकार का पतन हो गया। 1980 में हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी को भारी विजय प्राप्त हुई और पुनः इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस का गठन हुआ। इसके पश्चात अनेक राज्यों में कार्यरत् जनता पार्टी की सरकारें भंग कर दी गई। आगे चलकर इन राज्यों में हुए चुनावों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुई। अब अधिकांश राज्यों में कांग्रेस पार्टी की सरकारें थी, जिसके परिणामस्वरूप पुनः राजनीतिक समरूपता देखी जा सकती थी। 1989 में आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी की पराजय हुई और राष्ट्रीय मोर्चा की गठबंधन सरकार का गठन हुआ। 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 तथा 2009 के लोकसभा चुनाव से यह बात उभरकर सामने आई कि देश में गठबंधन की राजनीति का युग स्थापित हो चुका है और आने वाले काफी समय तक इस तरह की राजनीति का प्रतिमान कायम रहेगा। वर्तमान में केंद्र और राज्यों में एक ही दल की सरकारें स्थापित होने की संभावना लगभग समाप्त हो गई हैं। अप्रैल–मई 2004 में हुए 14वीं, और अप्रैल–मई, 2009 में हुए 15वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात केन्द्र में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनी, जिसमें अनेक राजनीतिक

दल शामिल हुए। वर्तमान में केन्द्र में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबंधन है, परन्तु अनेक राज्यों में विराधी दलों की सरकारें भी काम कर रही हैं। इस तरह भारतीय संघवाद में केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के मध्य समरूपता मौजूद नहीं है।

अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग के विरूद्ध प्रतिक्रिया– संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट या अन्य विश्वस्त सूत्रों से मिली सूचना के आधार पर यह विश्वास हो जाए कि किसी राज्य की संवैधानिक मशीनरी विफल हो गई है, तो राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य सरकार को बर्खास्त करके वहां राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। यह व्यवस्था राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक है, क्योंकि केन्द्र सरकार ने अधिकतर मामलों में इस व्यवस्था का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया है। इस कारण अनुच्छेद 356 बहुत अधिक विवादास्पद रहा है। 1967 के बाद इस अनुच्छेद का दुरूपयोग बहुत अधिक किया गया। इसलिए राज्य–सरकारों, राजनीतिक दलों, बुद्धिजीवियों आदि ने अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग की कटु आलोचना की है। यद्यपि 1989 के बाद उभरी गठबंधनात्मक राजनीति के दौर में अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग सीमित हो गया, क्योंकि अब केन्द्र सरकार के गठन में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी हो गई है। अब एक दल की राजनीतिक प्रमुखता समाप्त हो जाने और राजनीतिक दलों की समझौतावादी नीतियों के कारण अनुच्छेद 356 का प्रयोग उतनी आसानी से संभव नही है, जितना की पहले एक राजनीतिक दल की प्रमुखता के समय होता था। राष्ट्रपति ने अक्टूबर, 1997 में उत्तर प्रदेश और सितम्बर 1998 में बिहार में अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की केन्द्रीय मन्त्रिमंडल की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया था। उस समय अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग के विरूद्ध तीखी प्रतिक्रिया हुई थी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि केन्द्र सरकार इतनी आसानी से अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस अनुच्छेद का दुरूपयोग नहीं कर पायेगी और संघात्मक ढाँचे को एकाएक ढाँचे में नहीं बदल नही पाएगी।

राजनीति में क्षेत्रीय दलों की बढती भूमिका– चौथे आम चुनावों (1967) तक कांग्रेस पार्टी का राजनीति में प्रभुत्व होने कारण क्षेत्रीय दलों का कोई विशेष प्रभाव नहीं था, लेकिन चौथे आम चुनावों के बाद कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें बनने के कारण क्षेत्रीय दलों का महत्व बढने लगा। 1984 में तो मुख्य विपक्षी पार्टी तेलगू देशम ही थी, जो एक क्षेत्रीय पार्टी है। 1989 में वी. पी. सिंह के नेतृत्व वाली, राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार में क्षेत्रीय दल शामिल थे। 1991 में लोक सभा के चुनावों के अवसर पर कई राष्ट्रीय दलों ने क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन किया। 1991 में कांग्रेस पार्टी ने क्षेत्रीय दल अन्नमुद्रक के बाहरी समर्थन से सरकार बनाई थी। जून 1996 में एच. डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार में 23 दल सम्मिलित थे, जिनमें 14 राष्ट्रीय दल और नौ क्षेत्रीय दल थे। मार्च 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार में 17 दल सम्मिलित थे, जिनमें 15 क्षेत्रीय दल सम्मिलित थे। अक्टूबर, 1999 में बनी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार में शामिल 24 राजनीतिक दलों में केवल एक राष्ट्रीय दल और अन्य अधिकतर क्षेत्रीय दल थे। 14वीं लोकसभा चुनाव में (2004) के बाद डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनी थी। उस सरकार में 13 राजनीतिक दलों के सदस्य शामिल हुए थे, जिसमें क्षेत्रीय दलों की भूमिका प्रमुख थी। 15वीं लोकसभा चुनावों के बाद संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में बनी, जिसमें आठ क्षेत्रीय दल शामिल थे। केन्द्र सरकार में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सहभागिता ने भारतीय संघवाद में न केवल क्षेत्रीय दलों की भूमिका की है, बल्कि इनकी सत्ता में भागीदारी का विस्तार भी किया है। अब क्षेत्रीय दलों के बढते हुए महत्व को राष्ट्रीय दल भी समझ चुके हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय दलों को क्षेत्रीय दलों के साथ चुनावी गठबंधन करने पड़ रहे हैं। अब राष्ट्रव्यापी प्रभाव रखने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं भारतीय जनता पार्टी भी क्षेत्रीय दलों से गठजोड़ करने को बाध्य है। राजनीति में क्षेत्रीय दलों की बढती हुई भूमिका ने राजनीतिक एकाधिकारवाद की प्रवृति को समाप्त करके गठबंधन राजनीति को बढावा दिया है। इससे भारतीय संघ में राजनीतिक बहुलवाद की प्रवृति उभरकर सामने आई है।

राज्यों के लिए स्वायत्तता की माँग– भारतीय संघात्मक व्यवस्था में 1967 के बाद एक यह प्रवृत्ति उभरकर सामने आई कि राज्यों ने अधिक शक्तियों की मांग करनी शुरू कर दी। क्षेत्रीय दलों के बढते हुए महत्व और केंद्र सरकार में इनकी भागीदारी होने के कारण यह मांग और अधिक बढ गई है। क्षेत्रीय दलों की मांग है कि भारतीय संघ की इकाइयों को अपने अधिकार क्षेत्र में अधिक स्वायत्तता अर्थात् स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। यहां उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता–प्राप्ति से 1967 तक निरन्तर शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता रहा, क्योंकि केन्द्र की तरह (एक दो अपवादों के साथ) राज्यों में भी कांग्रेस ही सत्तारूढ रही। मुख्यमंत्रियों में इतना साहस नहीं था कि वे केन्द्र के किसी कदम को चुनौती दे सकें, लेकिन 1967 के बाद अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारों का गठन हुआ और उनकी ओर राज्यों को अधिकार दिए जाने की मांग की जाने लगी।

छठे दशक के मध्य से ही केंद्र–राज्य संबंध प्रशासकीय सुधार आयोग के लिए विचारणीय रहे हैं। इस आयोग के द्वारा एम. सी. सीतलवाड की अध्यक्षता में एक टीम की नियुक्ति की गई। इस टीम की रिपोर्ट के आधार पर प्रशासकीय सुधार

आयोग ने संविधान में संशोधन की कोई सिफारिश नहीं की, किन्तु राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन एवं प्रशासकीय कार्यों के हस्तांतरण की सिफारिश की ताकि– (i) केंद्र–राज्य संबंधों में तनाव में कमी आए, और (ii) केंद्र और राज्यों के प्रशासन में कर्मठता और मितव्ययता आए।

इसके अतिरिक्त 22 सितम्बर 1969 को तमिल नाडू सरकार ने भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में राजन्नार समिति का गठन किया, जिसका उद्देश्य केन्द्र–राज्य संबंधों का अध्ययन करना तथा राज्यों की स्वायत्तता के संबंध में सिफारिशें प्रस्तुत करना था। इस समिति ने मई, 1971 में तमिल नाडू सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थी–

- प्रधान मन्त्री की अध्यक्षता में राज्यों के मुख्य मंत्रियों की सदस्यता वाली अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् का तुरन्त गठन किया जाए। एक या एक से अधिक राज्यों को प्रभावित करने वाली कोई भी विधेयक इस परिषद् की स्वीकृति के बिना संसद में प्रस्तुत न किया जाए। प्रतिरक्षा तथा वैदेशिक संबंधों को छोड़कर अन्य विषय से संबंधित निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के परामर्श के बिना नहीं लिया जाए, यदि उसका प्रभाव किसी राज्य पर भी पड़ता हो।
- योजना आयोग का विघटन कर दिया जाए और उसके स्थान पर वैज्ञानिक, तकनीकी, कृषि और आर्थिक विशेषज्ञों की सदस्यता वाली एक वैधानिक इकाई का गठन किया जाए, जिसका कार्य राज्यों को परामार्श देना होना चाहिए। साथ ही राज्यों का अपना योजना आयोग होना चाहिएं
- वित्त आयोग का गठन स्थाई आधार पर किया जाए। राज्यों को करों में अपेक्षाकृत बड़ा भाग मिलना चाहिए, ताकि केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता कम हो सके।
- कुछ विषयों को संघ और समवर्ती सूची से राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए।
- राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति राज्य मन्त्रिमंडल के परामर्श से की जाए। साथ ही एक बार इस पद पर नियुक्ति व्यक्ति को सरकार के अन्तर्गत अन्य किसी पद पर नियुक्त न किया जाए।
- राज्यों के क्षेत्राधिकार में आने वाले विषयों के संदर्भ में राज्य के उच्च न्यायालयों को अन्तिम अधिकार प्राप्त होना चाहिएं

1977 में पश्चिम बंगाल सरकार ने केन्द्र सरकार को एक स्मृति–पत्र प्रषित किया, जिसमें संविधान में अनेक संशोधन की मांग करते हुए राज्यों की स्वायत्तता में वृद्धि की बात कही गई। इसी समय पंजाब अकाली दल ने आनंदपुर साहिब प्रस्ताव स्वीकृत किया, जिसमें केंद्र के अधिकार–क्षेत्र को वैदेशिक संबंध, प्रतिरक्षा, रेलवे, मुद्रा और संचार तक सीमित रखने की मांग की गई। इन सभी मांगों के परिप्रेक्ष्य में मार्च, 1983 में केंद्र सरकार द्वारा केंद्र–राज्य संबंधों के परीक्षण और तद्नुरूप सुझाव देने के लिए न्यायाधीश आर. एस. सरकारिया की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग की रिपोर्ट जनवरी 1988 में प्रकाशित हुई। आयोग के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों के वितरण में राज्यों की स्वायत्तता की आवश्यक के साथ एक मजबूत केन्द्र की आवश्यकता को महत्व दिया गया है। इस आयोग का मत है कि केन्द्र को केवल उन क्षेत्रों में कार्यवाही करनी चाहिए, जिसमें राष्ट्र के व्यापक हित में एक समान नीति और कार्यवाही आवश्यक है। आज भी भारतीय राजनीति में राज्यों की स्वायत्तता की मांग एक समस्या बनी हुई है।

नए राज्यों के गठन की मांग– भारत में लम्बे समय से अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों द्वारा पृथक राज्य के निर्माण की मांग की जा रही है और पृथक राज्य की मांग को लेकर आन्दोलन भी किए गए हैं। 1953 में भाषायी आधार पर आन्ध्र प्रदेश की स्थापना की गई, जिसके कारण देश के विभिन्न भागों से भाषा के आधार पर नए राज्यों के गठन की मांग जोर पकड़ने लगी। केन्द्र सरकार ने अनुभव किया कि राज्यों के पुर्नगठन से प्रश्न को अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता। अतः उसने 1953 में राज्य पुर्नगठन आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग की सिफारिश के आधार पर संसद द्वारा राज्य पुर्नगठन अधिनियम 1956 बनाया गया, जिसके द्वारा भाषा के आधार पर 14 राज्यों का गठन किया गया, किन्तु इससे भी समस्या हल नहीं हुई और थोड़े ही समय के बाद इसी प्रकार से अन्य मांगे सामने आई। 1960 में बम्बई राज्य का विभाजन करके दो राज्यों–गुजरात तथा महाराष्ट्र–की स्थापना की गई। पंजाब में अकाली दल के आन्दोलन के कारण नवम्बर, 1966 में तत्कालीन पंजाब का विभाजन करके पंजाब तथा हरियाणा राज्यों की स्थापना हुई। इसी तरह नवम्बर, 1999 में उत्तराखंड, झारखण्ड व छतीसगढ राज्यों का निर्माण किया गया था। इन तीन गए राज्यों के निर्माण से पृथक राज्य बनाने की मांग और अधिक तेज हो गई। देश के विभिन्न भागों, जैसे– महाराष्ट्र में विदर्भ, कर्नाटक में कोडवा, असम में बोडोलैंड, पश्चिम बंगाल में गोरखलैंड, आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना, उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश और बुंदेलखंड राज्य बनाने की मांग में तेजी आई। 2012–2013 में आन्ध्र प्रदेश के अन्दर तेलंगाना राज्य की स्थापना की मांग ने उग्र रूप धारण कर लिया है। दावों–प्रतिदावों के मध्य 1 जून, 2014 में तेलंगाना राज्य की स्थापना की गई।

राज्यों के लिए राजस्व स्त्रोत बढाने की मांग– संविधान द्वारा जिस प्रकार शक्तियों का केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य विभाजन किया गया है, उसी प्रकार इनके मध्य आय के स्त्रोतों का भी विभाजन किया गया है। संघात्मक व्यवस्था की सफलता के लिए केन्द्र एवं राज्यों के मध्य वित्त का समुचित विभाजन आवश्यक है। किन्तु भारत में वित्तीय क्षेत्र में राज्यों की शक्तियाँ काफी सीमित हैं, जब कि राज्यों को अपने विकास कार्यो के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि केन्द्र सरकार राज्यों को वित्तीय सहायता देती है, किन्तु जिन राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं, केन्द्र सरकार प्रायः उन राज्यों के साथ भेदभाव करती है और उन्हे पर्याप्त सहायता नहीं देती हैं, जिससे उन राज्यों का विकास रूक जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को अपनी आय से राज्यों को अनुदान देने का अधिकार है। रानीतिक विश्लेषकों का मत है कि केन्द्र सरकार अनुदान देते समय कई प्रकार की शर्तें लगा देती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मार्च, 1983 में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश तमिल नाडू तथा पाण्डिचेरी के मुख्य मन्त्रियों ने यह मांग की कि केंद्र–राज्यों को जो वित्तीय सहायता प्रदान करता है, उसे एक निश्चित कानून द्वारा नियमित किया जाना चाहिए। यह सर्वविदित है कि राज्यों की केंद्र पर अत्यधिक निर्भरता संघात्मक व्यवस्था के विरूद्ध है, इसीलिए लगभग सभी राजनीतिक दल का इस बात का समर्थन करते हैं कि राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध करवाए जाने चाहिएं, ताकि उन्हे अपनी विकासकारी योजनाओं के लिए केंद्र की दया पर निर्भर न रहना पड़े।

केंद्र राज्यों के संबंधों के पुनर्निधारण की मांग– भारतीय संघ में केन्द्रीयकरण की बढती प्रवृति की प्रतिक्रिया स्वरूप यह मांग जोर पकड़ने लगी है कि केंद्र–राज्यों के संबंधों की पुनर्समीक्षा की जाए। आज यह अनुभव किया जा रहा है कि भारतीय संघ में राज्यों की सुदृढ बनाने की नितांत आवश्यकता है। उल्लेखनीय है राज्यों को अधिक शक्तिशाली बनाने वाले पक्षकारों का कहना है कि केवल प्रतिरक्षा, विदेश मामले, संचार, मुद्रा आदि राष्ट्रीय महत्त्व के विषय केंद्र सरकार के पास होने चाहिएँ और शेष विषय राज्यों सरकारों को दिए जाने चाहिए। केंद्र सरकार द्वारा अप्रैल, 2007 में केन्द्र–राज्य संबंधों की समीक्षा करने एवं सुझाव देने के लिए एक नए आयोग का गठन किया गया।

क्षेत्रवाद को बढावा– भारतीय संघवाद के क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति भी निरन्तर जोर पकड़ती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रीय दलों का गठन हुआ है। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का निरन्तर हो रहा विकास संकीर्ण क्षेत्रीय भावनाओं का प्रमाण ही है। पंजाब में शिरोमणि अकाली दल, असम में असम गण परिषद्, तमिल नाडू में डी. एम. के., आंध्र प्रदेश में तेलगू देशम, जम्मू–कश्मीर में नेशनल कांफ्रेस, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, हरियाणा में इण्डियन नेशनल लोकदल, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल, उड़ीसा में बीजू जनता दल आदि क्षेत्रीय दल हैं। इसके अतिरिक्त, अन्य राज्यों में भी क्षेत्रीय दलों की प्रवृत्ति बढती जा रही है। भारतीय राजनीति में उभरी गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की बढती भूमिका के कारण ये दल केन्द्र सरकार पर निरन्तर क्षेत्रीय हितों की पूर्ति करने का दबाव डालते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद की अभिव्यक्ति केन्द्र व राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवादों के रूप में भी हुई है। राज्यों ने कई बार केन्द्र निर्देशों तथा सुझावों को मनाने से इन्कार किया है। 1968 में केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्र ने राज्यों को निर्देश दिया था, किन्तु केरल की वामपंथी सरकार ने इस निर्देश को श्रमिक–विरोधी कहकर मानने से इन्कार कर दिया था। उसी वर्ष पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग तथा नक्सलवादी क्षेत्रों में होने वाले उपद्रवों से चिन्तित होकर केन्द्र सरकार ने इस क्षेत्रों में लोगों द्वारा हथियार रखने पर प्रतिबंध लगा दिया, जिसे राज्य सरकार ने केन्द्र द्वारा राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप बताया। केन्द्र द्वारा राज्यों में केन्द्रीय रिवर्ज पुलिस भेजने का कई राज्यों द्वारा कड़ा विरोध किया गया। इस प्रकार राज्यों द्वारा केन्द्र के निर्देशों का पालन न करना या केन्द्र की नीति का विरोध करना क्षेत्रीयवाद की नीति का अनुसरण करना है। भारत में बढती क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति संघात्मक व्यवस्था के संचालन में एक बाधा का कार्य कर रही है।

निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 26 जनवरी, 1950 को अस्तित्व में आए संघात्मक ढाँचे में अनेक प्रवृत्तियों का उदय हुआ है, जो भारतीय राजनीति में आए विभिन्न परिवर्तनों का लगाते हुए भारतीय संघ में राज्यों को सशक्त भूमिका निभाने की ओर अग्रसर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1 कुमार डॉ0 राकेश 'हरिणा में क्षेत्रीय दलों की भूमिका प्रमुखत्या इनेलो का अध्ययन' पी.एच.डी. शोध ग्रन्थ, 2017
2 चौधरी नीरजा 'मोदी प्रभाव विस्तार' दैनिक जागरण, रोहतक, 20 अक्टूबर 2014।
3 खेड़ा हरीश 'जिसकी दिल्ली उसका हरियाणा' अमर उजाला, रोहतक 27 अगस्त 2014।
4 बंसल पवन 'हरियाणा में पहली बार भाजपा बहुमत के साथ' जनसत्ता, दिल्ली, 20 अक्टूबर 2014।

5 यादव के.सी. 'सर छोटू राम (1881–1945) अन्डरसटैन्डिग हिज पालिटीकल आडियालाजी वर्ल्ड वियू अचीवमेंट, जरनल आफ पियूप्ल एण्ड सोसायटी आफ हरियाणा', बिनायल पब्लिकेशन ऑफ म.द.वि., रोहतक, अप्रैल 2010 ।

6 चौधरी डी.आर. 'हरियाणा इल्यूजन एण्ड रियलिटि फेडरल इण्डिया पब्लिशर', चण्डीगढ 1999 ।

7 दहिया भीम सिंह 'हरियाणा में सत्ता की राजनीति : जाति व धन का खेल' ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली 2009 ।

8 कश्यप सुभाष 'दल–बदल व राज्य की राजनीति' श्रीवाली प्रकाशन, मेरठ 1970 ।

9 यादव जे.एन. सिंह 'हरियाणा स्टडी ऑफ हिस्ट्री एण्ड पॉलिटिक्स, प्रकाशन मनोहर', गुरूग्राम 1976।

10 चाहर एस.एस. 'डाइनामिक्स ऑफ इलैक्ट्राल इन हरियाणा प्रकाशन संजय, नई दिल्ली 2008 ।

11 मितल, एस.एस., 'हरियाणा : ए हिस्टोरिक्ल पर्सपेक्टिव' प्रकाशन एटलांटिक, नई दिल्ली, 1976।

12 कश्यप सुभाष, 'गठबन्धन की सरकार और भारत में राजनीति, 'प्रकाशन एन. बी.डी.टी, नई दिल्ली, 1997

13 सुरेन्द्र कटारिया, भारत में लोक प्रशासन , आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर, पेज–221.

14 एन.एस. कहलोत, न्यू चैलेन्ज टू इंडियन पॉलिटिक्स टीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, प्रा. लि., दिल्ली.

15 रमेश अरोरा, रजनी गोयल, इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन इंस्टीटयूट एण्ड इश्यू, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली

16 एम.पी. सिंह, हिमांशु राय, इंडियन पोलिटिक्स सिस्टम, मानक पाब्लकेशन, नई दिल्ली।

17 The Search for a perfect Bill, The Indian Express, 28 Aug 2011.

18 Victory for Anna, Parliament adopt's Sense of house on Lokpal Bill' Times of India 27 Aug 2011.

19 Lok Sablha Debate, Sushma Swaraj Says BJP supports Hazzare 3 Must have Point, NDITV 27 Aug 2011.

20 C.L. Baghel, Yogander Kumar, Public Adminstration, Vol&2, Knishka Publication, New Delhi.